International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030
Impact Factor: RJIF 5.24
www.advancedjournal.com
Volume 3; Issue 5; September 2018; Page No. 48-50

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी : जीवनी साहित्य एवं उपन्यास साहित्य सृजन का अध्ययन

डॉ० समयलाल प्रजापति
सहायक प्राध्यापक हिन्दी, शासकीय महाविद्यालय, बरका, जिला सिंगरौली, मध्य प्रदेश, भारत।

सारांश
आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी साहित्य के विविध पक्षों में साहित्य संरचना की है। उनका साहित्य विशिष्ट वैविध्यपूर्ण एवं विपुल है। निबन्ध उपन्यास, आलोचना, काव्य सर्जना, साहित्येतिहास लेखन, जीवनी लेखन के साथ अनुवाद एवं सम्पादन के क्षेत्र में अप्रतिम एवं अविस्मरणीय कार्य उनके द्वारा हुआ है। उनका रचना संसार विपुल होकर भी गम्भीर है। आचार्य हजारी प्रसाद जी के चारों उपन्यास ऐतिहासिक है। इन चारों उपन्यासों में उनका सांस्कृतिक दृष्टिकोण निहित है। उनकी इन औपन्यासिक कृतियों को हम सांस्कृतिक इतिहास सम्बन्धी रचनाओं की संज्ञा प्रदान कर सकते हैं। आचार्य द्विवेदी जी सर्वत्र मानव हित को दृष्टि में रखकर, जीवन सत्य की बात करते हैं। यह बात दूसरी है कि उनके विचारों का स्रोत अतीत–वाड़ग्मय हुआ करता है लेकिन यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि उनका कथन वर्तमान से हमेशा संलग्न रहता है। उनके उपन्यासों को डॉ. नामवर सिंह निबन्ध मानते हैं। इसका अर्थ यह होता है कि उपन्यास जैसी विशाल कलेवर रचना में भी द्विवेदी जी विचार श्रृंखला को बिखरने नहीं देते हैं। वे अतीत से वर्तमान को सम्बद्ध करके देखते हैं। ऐतिहासिकता की रक्षा करते हैं, संस्कृति की व्याख्या देते हैं परन्तु वे विचार क्रम को नहीं टूटने देते हैं। द्विवेदी जी के उपन्यासों में निरपवाद रूप से अंतिम समाधान भक्ति में निदर्शित किया गया है।

मूल शब्द : आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, जीवन साहित्य, उपन्यास, सृजन।

प्रस्तावना

मृत्युन्जय रवीन्द्र – सन् 1963 में प्रकाशित यह कृति श्रेष्ठ ग्रन्थ है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने रवीन्द्र नाथ ठाकुर की जीवनी 'मृत्युन्जय रवीन्द्र' के नाम से लिखी है। इस पुस्तक में आचार्य ने गुरुदेव के महान व्यक्तित्व की झलक प्रस्तुत की है। उनके हृदय की उदारता, उनका मानव प्रेम, उनकी सत्य–साधना के साथ–साथ उनकी दिनचर्या का भी उल्लेख किया है। रचना के अन्त में गुरुदेव की जन्म–कुण्डली दी है। इस कुण्डली के विषय में द्विवेदी जी ने कहा है कि गुरुदेव की कुण्डली ने महापुरुष–योग विलक्षण रूप से घटित होता है।[1] आचार्य द्विवेदी फलित ज्योतिष को ग्रीक प्रभाव मानते हैं। भविष्य कथन में उनका मन शंकाशील रहता है। परन्तु इस जन्म–कुण्डली ने मानो उनकी शंका का समाधान कर दिया है। वे घटनाओं के समय के अन्तर पर विचार करके विशोत्तरी दशा के सन्दर्भ में, इसे तत्कालीन (जन्म–कालीन) समयान्तर का कारण मानते हैं।[2] श्री रवीन्द्र नाथ ठाकुर की स्मृति के रूप में भी श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने, उनके अवसान पर एक लेख लिखा था – 'नव ज्योति देने वाले' शीर्षक से। इसमें उन्होंने एक भाव–भीनी श्रद्धांजलि गुरुदेव के प्रति समर्पित की थी।

इस जीवनी और संस्मरण–साहित्य के अतिरिक्त अन्य अनेक संस्मरण आचार्य द्विवेदी ने लिखे हैं। 'पत्र' नामक प्रकाशन में उनके अनेक संस्मरण संग्रहीत हैं उन्होंने अपने परिजनों के नाम, भ्रमण करते समय, सागर तट और शैल–शिखरों के सुन्दर संस्मरण पत्र लिखे हैं। राजकोट से, परमाकुलम से, त्रिवेन्द्रम से और श्रीनगर से लिखे गये पत्र उनकी संस्मरण लेखन–कला को उजागर करते हैं।

आचार्य हजारी प्रसाद जी अपने उपन्यासों को 'गप्प' कहते हैं परन्तु हैं उनके चारों उपन्यास ऐतिहासिक है। इन चारों उपन्यासों में उनका सांस्कृतिक दृष्टिकोण निहित है। उनकी इन औपन्यासिक कृतियों को हम सांस्कृतिक इतिहास सम्बन्धी रचनाओं की संज्ञा प्रदान कर सकते हैं। आचार्य द्विवेदी जी सर्वत्र मानव हित को दृष्टि में रखकर, जीवन सत्य की बात करते हैं। यह बात दूसरी है कि उनके विचारों का स्रोत अतीत–वाड़ग्मय हुआ करता है लेकिन यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि उनका कथन वर्तमान से हमेशा संलग्न रहता है। उनके उपन्यासों को डॉ. नामवर सिंह निबन्ध मानते हैं। इसका अर्थ यह होता है कि उपन्यास जैसी विशाल कलेवर रचना में भी द्विवेदी जी विचार श्रृंखला को बिखरने नहीं देते हैं। वे अतीत से वर्तमान को सम्बद्ध करके देखते हैं। ऐतिहासिकता की रक्षा करते हैं, संस्कृति की व्याख्या देते हैं परन्तु वे विचार क्रम को नहीं टूटने देते हैं। द्विवेदी जी के उपन्यासों में निरपवाद रूप से अंतिम समाधान भक्ति में निदर्शित किया गया है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के चारों उपन्यासों का विवरण निम्न प्रकार है –

1) बाणभट्ट की आत्म कथा – का रचनाकाल सन् 1947 है। इसमें बीस उच्छवास हैं। औपन्यासिक कौशल के साधन रूप में कथामुख और उपसंहार लिखा गया है। डायरी शैली में लिखित यह रचना ऐतिहासिक परम्परा का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। द्विवेदी जी ने हर्षकालीन स्थूल आंकड़ों को आधार न बनाकर तत्कालीन साहित्य में चित्रित सत्यों को आधार बनाया है। सुगतभ्रद्र, शीलभद्र और वाण ऐतिहासिक व्यक्तियों से अधिक सत्य है। इस कृति में आचार्य द्विवेदी ने सातवीं शताब्दी के जन–जीवन में आधुनिक जीवन को देखा है। बाणभट्ट की आत्मकथा में तत्कालीन समाज को जिस शैली मे अंकित किया गया है वह व्यक्ति–विशेष की कला न होकर युग–विशेष की संस्कृति चेतना की मनोमुग्धकारी छटा है।[3] निपुणिका की कहानी आधुनिक कलंकिता नारी की मर्म–कथा बन गयी है। द्विवेदी जी नारी की मार्मिक वेदना की गाथा गाकर सहानुभूति उत्पन्न करके नहीं रह जाते, वे नारी शक्ति को आदर्श रूप में प्रतिष्ठित करते हैं।

'बाणभट्ट की आत्मकथा' में संयम, तप और स्वाध्याय का स्वर मुखरित है। इसके सभी पात्र उत्सर्ग–भावना के जीवन्त आदर्श से प्रेरित हैं। नारी को सर्वत्र आदर्श रूप में आंका गया है। रचना का

नायक बाण; नारी देह को देवमन्दिर मानने वाला है। वास्तव में यह कृति महाकाव्य की महिमा से मण्डित है। द्विवेदी जी ने उपसंहार में इस रचना को साहित्य में एक अभिनव प्रयोग कहा है। वास्तव में निपुणिका का 'प्रेम के लिए प्रिय का त्याग', और 'भट्टिनी का आत्मगौरव' इस रचना की अभिनवता है। महामाया का 'सतीत्व' और सुचरिता की भक्ति भी अपूर्व है।

2) चारु चन्द्रलेख – उपन्यास का रचना–काल सन् 1963 है। पहले यह उपन्यास 'कल्पना' में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुआ था। इसमें बत्तीस प्रकरण हैं। इस बृहत कृति को श्री नवल किशोर पात्र बहुल कहते हैं और इसमें घटनाओं का घटाटोप पाते हैं साथ ही वे इसे ''तान्त्रिक साधनाओं को लेकर लिखा गया प्रथम मौलिक उपन्यास है। ऐसा भी स्वीकार करते हैं। इस रचना में बारहवीं–तेरहवीं शताब्दी के भारत की शासन–व्यवस्था और समाज के पतन की कहानी कही गयी है। द्विवेदी जी ने इस पतन विडम्बना को भी रोचक रूप में प्रकट किया है। उसमें आशा–उत्साह का मन्त्र फूंका है। इसमें बौद्ध–जैन और ब्राह्मण धर्मों के परस्पर निकट आने वाले तत्वों को जन–जीवन में घुलते–मिलते दिखाया है। इस रचना में द्विवेदी जी का मानवतावादी दृष्टिकोण और अधिक स्पष्ट हुआ है।

इस उपन्यास की मूल कथा रानी चन्द्रलेखा और राजा सातवाहन के आस–पास घूमती है और शत्रुओं से आक्रान्त राजा की मार्मिक पीड़ा के साथ समाप्त होती है। मैना से रानी और राजा दोनों का चरित्र प्रभावित हुआ है। परिपूर्ण आत्म–समर्पण मैना की शक्ति है और द्विधा–विभाजन चन्द्रलेखा की कमजोरी। कथावस्तु का सम्बन्ध किसी ऐतिहासिक घटना से नहीं है, इसे तत्कालीन साहित्यिक ग्रंथों से संकलित किया गया।[4] जयचन्द्र पर लगे देश द्रोह के कलंक को सूहब्र देवी की उद्भावना के द्वारा मिटाने का प्रयत्न किया गया है। वास्तव में इस उपन्यास में इतिहास कम और कल्पना अधिक है। इस उपन्यास की भी शैली दैनंदिनि–आत्म कथात्मक है। रचना की भाषा कठिन शब्दों से बनती है। परन्तु वह दुरूह नहीं है। इस रचना में आचार्य द्विवेदी जी ने भारतीय संस्कृति की गरिमा का गान किया है और देश को ऊँचा उठाने की लालसा को जगाया है। इस प्रकार यह रचना अद्भुत है। इसको कुँअर नारायण सिंह भले ही कल्पित–कथा–संग्रह की संज्ञा दें पर वास्तव में यह ऐतिहासिक उपन्यास से अधिक सांस्कृतिक इतिहास है और साहित्य की अक्षय निधि है।

3) पुनर्नवा – का प्रकाशन 1973 में हुआ था। इस रचना ने एक नवीन शिल्प के साथ उपन्यास जगत में प्रवेश किया है। इसमें विवाह, प्रेम, सामाजिक विधि–विधान और उनका विरोध–शोध प्रकट हुआ है। इसमें चतुर्थ शताब्दी का वातावरण प्रस्तुत हुआ है। जर्जरित परम्पराओं और टूटती व्यवस्थाओं के परिमार्जन पर भी प्रकाश डाला गया है। इस रचना का ताना–बाना युग की ऐतिहासिक–साहित्यिक सामग्री से तैयार किया गया है। इतिहास की लोक–कथा से संगति कराना लेखक के शिल्प–पटुत्व का प्रतीक है। उपन्यास के आदर्श नारी–पात्र मृणाल और यथार्थ नारी–पात्र चन्द्रा के माध्यम से आज के संकल्प–शून्य और वासना–प्रधान जीवन का समाधान खोजने का प्रयास किया गया है। परम्पराओं के शोधन की युगानुकूल आवश्यकता आर्यक–चन्दा–प्रसंग के द्वारा प्रकटित है।

पुनर्नवा में पावन प्रेम की तीन त्रिवेणियाँ प्रवाहित होती हैं। देवरात शर्मिष्ठा–मंजुला, चारुदत्त–धूता–वसन्तसेना और आर्यक–मृणाल–चन्द्रा चतुर्थ प्रेम–संगम है श्यामरूप–मदनिका का। बाणभट्ट की आत्म–कथा में प्रेम की अदृप्तधारा प्रवाहमान थी। 'चारु चन्द्र लेख' में प्रेम जहाँ–तहाँ झाँका अवश्य है पर डर के साथ। मैना का राजा के प्रति प्रेम आलोकित नहीं हो सका है। परन्तु पुनर्नवा में प्रेम ने जीवन के ठोस धरातल को स्पर्श किया है। प्रेम की दृष्टि से पुनर्नवा पूर्व के दोनों उपन्यासों से अधिक सफल हुआ है। सांस्कृतिक चेतना के साथ इस रचना में जीवन–सत्यों का भी प्रतिपादन हुआ है।

4) अनामदास का पौधा – का प्रकाशन सन् 1976 में हुआ था। आचार्य द्विवेदी ने सन् 1940 के करीब छान्दोग्योपनिषद के रेक्य–आध्यान पर एक कहानी लिखी थी, इस कहानी का शीर्षक 'सब हवा है' था। इसका नवीन रूप यह उपन्यास है। इसका कथा सूत्र औपनिषदिक आधार पर चुना गया है। छान्दोग और वृहदारण्यक उपनिषदों से इसकी कथा ली गई है। लेखक क्रमशः सातवीं, बारहवीं, चौथी शताब्दी के सांस्कृतिक चित्र प्रस्तुत करने के बाद ई.पू. 1500 के काल में प्रवेश करता है। श्री लोकमान्य तिलक ने उपनिषदों की रचना का समय कृतिका नक्षत्र में बसंत–संपात की गणना करके और ज्योतिष विषयक ग्रंथों के अनुसार सूर्य–चन्द्र के घनिष्ठा नक्षत्र में भ्रमण करने की घटना के आधार पर वेदांग–ज्योतिष की रचना का समय 1400 ई.पू. के आस–पास बताया है।[5] छान्दोग्योपनिषद प्रौढ़ और प्रामाणिक कृति है। 'अनामदास का पौधा' द्विवेदी जी के औपन्यासिक ज्ञान की उपलब्धि है और उनकी आर्षवाणी का उद्घोष करने वाली श्रेष्ठ कृति है। तापस कुमार रेक्व को विरक्ति से संसक्ति की ओर प्रेरित करने वाली यह रचना सर्वथा नवीन शैली में उपस्थित हुई है। 'समाज तपस्या की कसौटी है' वाक्य इस उपन्यास का मूल मंत्र हैं। इसमें विवाह–उद्वाह के भेद की व्याख्या है तथा काम के उदात्त स्वरूप की विवेचना भी। इस रचना का विषय जटिल है परन्तु भाषा पूर्व–रचित तीनों उपन्यासों से सरलतर है। यह द्विवेदी जी का कथा कौशल है जिसने ज्ञान को कथा का विषय बना दिया। इसमें सत्य को परमतप, स्वाध्याय को सर्वश्रेष्ठ साधन तथा सेवा को परम धर्म कहा गया है। सत्य बड़ा गुण है, स्वाध्याय और सत्संग परम तप और पर–दुख कातरता सबसे बड़ा मानवीय गुण है। सर्वत्र आत्मानुभूति का प्रत्यक्ष प्रमाण है दूसरों के लिए अपने आपको दलित द्राक्षा की तरह निचोड़कर दे देना।

आचार्य द्विवेदी ने 'अनामदास का पौधा' में जाबाल के प्रेम और रेक्व के अभिलाषा–भाव की व्यंजना बड़ी कुशलता से की है। इस कृति में प्राचीन आश्रमों और गुरुकुलों के प्रति आस्था और सम्मान प्रकट हुआ है। परार्थभावना को सरलीकृत करके, दर्शनशास्त्र को व्यावहारिकता का रूप प्रदान किया गया है। परम वेश्वानर–साधना का अर्थ संसार के पीड़ित जीवों को पीड़ा–मुक्त करना इस रचना का एक ध्येय है।

समग्र रूप से इस रचना के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि यह उपन्यास–क्षेत्र की अनूठी कृति है। धर्म और संस्कृति को इसके माध्यम से साहित्य का स्वरूप दिया गया है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लोक–जीवन के परिप्रेक्ष्य में साहित्य को परखते हैं। उनकी समीक्षा का आधार मानवतावाद है। उन्होंने ऐतिहासिक और सामाजिक समीक्षा पद्धति की नीव डाली है। शुक्ल जी द्वारा उपेक्षित साहित्य का पुनर्मूल्यांकन करके द्विवेदी जी ने उनके अधूरे कार्य को पूर्ण किया। नाथ सिद्ध–साहित्य के विषय में उनका मत है कि इसे धार्मिक कहकर ढाला नहीं जा सकता। द्विवेदी जी की समीक्षा दृष्टि रचनात्मक है। उन्होंने कभी शुक्ल जी की त्रुटियों का ढिंढोरा नहीं पीटा बल्कि वे उनके पूरक बने रहे। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के समीक्षक के समक्ष पहुँचकर ग्रन्थकार शक्ति–संकुचित होता है और आचार्य द्विवेदी के समीक्षक के समक्ष

प्रीत–प्रसन्न।[6] आचार्य शुक्ल निरीक्षक हैं और द्विवेदी जी को शिक्षक निर्देशक। ''आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी शुक्ल जी की ही परम्परा में कुछ अधिक उदार और जनवादी विचारक थे। द्विवेदी जी संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित किन्तु हिन्दी के प्रबल पक्षधर थे उनकी रचनाओं ने हिन्दी–साहित्य को प्रचुर सम्पन्नता प्रदान की है। उनके समीक्षक के विषय में श्री रामदरश मिश्र का कथन द्विवेदी की समीक्षा–दृष्टि बड़े व्यापक धरातल पर बनी है। वे प्राचीन पण्डित हैं, नवीन के व्याख्याता हैं, बुद्धि के धनी हैं, सामाजिक शक्ति के आकांक्षी हैं सौन्दर्य के उपासक हैं, भावों और विचारों की समृद्धि साहित्य में देखना चाहते हैं किन्तु शब्दों के भी मर्मज्ञ और शिल्पी हैं, सृष्टा के व्यक्तित्व के अध्येता हैं और उसके समूचे परिवेश के सत्यों को जानने के आग्रही हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का समीक्षा–साहित्य निम्न प्रकार है –

1. **सूर–साहित्य** – सन् 1934 में प्रकाशित इस ग्रंथ के सात अध्यायों में सूरदास के साहित्य का सांगोपांग विवेचन किया गया है। ग्रन्थान्त में दो परिशिष्ट हैं। इस रचना में द्विवेदी जी ने कृष्णभक्ति को महाभारत–काल से उदित माना है।
2. **साहित्य का साथी** – सन् 1949 में प्रकाशित इस पुस्तक का पुनर्प्रकाशन 'साहित्य–सहचर' के नाम से सन् 1965 में हुआ था। ऐतिहासिक–सांस्कृतिक विचारों का प्रतिनिधित्व करने वाली इस रचना को छात्रोपयोगी दृष्टि से लिखा गया है। इस ग्रन्थ में द्विवेदी जी की समीक्षा–पद्धति का सुस्पष्ट स्वरूप प्रकट हुआ है।
3. **कबीर** – ग्रन्थ का प्रकाशन सन् 1942 में हुआ था। इस रचना में द्विवेदी जी की अनुसंधान–वृत्ति और विद्वता का रूप प्रकट हुआ है। कबीर की भक्ति–भावना इस पुस्तक की महत्वपूर्ण बात है। कबीरदास द्वारा प्रयुक्त शब्दों की यात्रा और उनके अर्थ–विकास को इस रचना में अनुसंधान का आधार बनाया है। खसम, शून्य, निरंजन, नाद, बिन्दु, राम, रहीम आदि शब्दों को द्विवेदी जी ने परिस्थिति के अनुसार अर्थ–व्यंजक कहा है।
4. **नाथ–सम्प्रदाय** – सन् 1950 में प्रकाशित रचना है। इस रचना में द्विवेदी जी ने 'गोरखनाथ' को सांस्कृतिक स्रोत माना है। वे उन्हें केवल सन्त नहीं मानते वरन् बौद्ध–सिद्ध और परवर्ती काल के सन्तों के मध्य की कड़ी कहते हैं। इस रचना में आचार्य द्विवेदी ने साहित्य–समीक्षक के लिए कवि और उसके काव्य को समझने के लिए लोकजीवन की रूढ़ियों, रीतिरिवाजों, धार्मिक परम्पराओं आदि का अध्ययन आवश्यक बताया है। श्री द्विवेदी जी नाथसिद्धों को बोध नहीं मानते वरन् उन्हें शेव सिद्ध करते हैं।
5. **मध्यकालीन धर्म–साधना** – का प्रकाशन सन् 1952 में हुआ था। इस रचना में द्विवेदी जी ने सिद्ध किया है कि मध्यकालीन काव्य की प्रत्येक प्रवृत्ति पूर्वकालीन प्रवृत्ति का विकसित रूप है। उन्होंने कहा है कि भक्तिकालीन साधकों के शब्दों से परवर्ती हिन्दी के भक्तिकाल को समझने में सहायता प्राप्त हुई है।
6. **सहज साधना** – सन् 1954 में प्रकाशित समीक्षा–कृति है। इसमें आचार्य द्विवेदी ने शैव, बौद्ध और शाक्त साधकों का केन्द्र 'श्रीशेल' को बताया है। इस ग्रंथ में मध्ययुगीन सन्तों की मानवतावादी भावना का विवेचन है।
7. **मध्यकालीन बोध का स्वरूप** – कृति सन् 1960 में प्रकाशित हुई थी। इस समीक्षा–ग्रंथ में आठवीं शताब्दी तक की रचनाओं की चर्चा की गई है। संस्कृत–काव्य में बढ़ती हुई लक्षण–प्रियता और अपभ्रंश–काव्य की सरल मोहकता का उल्लेख हुआ है। इसमें द्विवेदी जी ने अपभ्रंश भाषा–विषयक और अपभ्रंश काव्य–सम्बन्धी खोजपूर्ण तथ्य प्रस्तुत किये हैं। हिन्दी भाषा के अध्ययन के लिए वे अपभ्रंश को समझना आवश्यक बताते हैं। गुरु गोरखनाथ के व्यक्तित्व को वे महान मानते हैं। उनके अनुसार गोरखनाथ शंकराचार्य से भी बड़े सांस्कृतिक परम्परा के रक्षक हैं। इस रचना में द्विवेदी जी ने लोक–साहित्य के महत्व को प्रतिपादित किया है। काव्य रूढ़ियों का भी इसमें सविस्तार वर्णन आया है।
8. **कालिदास की लालित्य–योजना** – इसका प्रथम संस्करण सन् 1965 में प्रकाशित हुआ था। इस रचना में द्विवेदी जी ने कालिदास के काव्य की व्याख्यात्मक आलोचना प्रस्तुत की है। सृष्टि–रचना–सिद्धान्त की व्याख्या के साथ–साथ इसमें नारी–सौन्दर्य, भावानुप्रवेश आदि विषयों पर भी विचार व्यक्त किये गये हैं।
9. **साहित्य का मर्म** – तीन व्याख्यानों के संकलित इस ग्रंथ रूप का प्रकाशन सन् 1950 में हुआ था। इसमें समीक्षा के लिए सामाजिक मूल्यों को समझने का आग्रह किया गया है। संस्कृत के लक्षण–ग्रंथों की गम्भीरता को सिद्ध किया गया है। उनकी समीक्षा–शैली के विषय में डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी का यह कथन कि– ''उनकी समीक्षा–दृष्टि मुख्यतः ऐतिहासिक–सामाजिक है वे किसी कृति की आलोचना उसके ऐतिहासिक और सामाजिक सन्दर्भ में करने के पक्षधर हैं।'' सत्य और सटीक है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने गद्य की प्रत्येक विधा का साधिकार विवेचन किया है। वे सच्चे सर्जक थे। उनका विपुल सृजन, विशाल ज्ञान और गम्भीर चिन्तन पर आधारित है। उन जैसा श्रेष्ठ सर्जक हिन्दी–साहित्य में दूसरा नहीं हुआ है। उनका सम्पूर्ण साहित्य हिन्दी जगत के लिए अमूल्य धरोहर सिद्ध हुआ है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि बाणभट्ट की आत्मकथा एक ऐसा उपन्यास है जिसे ऐतिहासिक भूमिका के परिवेश में लिखा गया है। यह रचना उपन्यास–कला को समेटते हुए मानवीयता की, रस की, सृष्टि करती है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने प्रथम तीन उपन्यासों में पात्रों को प्रतीक रूप में भी प्रस्तुत किया है। श्री चक्र के तीन बिन्दु हैं – इच्छा, क्रिया और ज्ञान। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में ये तीनों बिन्दु क्रमशः भट्टिनी, निपुणिका और बाण हैं। 'चारु चन्द्रलेख' में ये प्रतीक चन्द्रलेखा, मैना और सातवाहन हैं। 'पुनर्नवा' में यही बिन्दु मृणाल चन्द्रा और आर्यक रूप में अवतरित हुये हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के चतुर्थ उपन्यास 'अनामदास का पोथा' में उपर्युक्त चार में से कोई प्रतीक–पात्र नहीं है। यह रचना उनकी सर्वथा नवीन सृष्टि है, समूचे उपन्यास–जगत से पृथक है और उनके प्रथम तीनों उपन्यासों से भिन्न रचना–विधान लिये हुये हैं।

सन्दर्भ

1. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के पत्र, पृष्ठ 48, सम्पादक मुकुन्द द्विवेदी.
2. हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृष्ठ 8, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी.
3. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का समग्र साहित्य : एक अनुशीलन, पृष्ठ 205, श्री यदुनाथ चौबे.
4. अनामदास का पोथा, पृष्ठ 62.
5. बाणभट्ट की आत्मकथा, पृष्ठ 150.
6. चारु चन्द्रलेख, पृष्ठ 198